चेहरों की तख्तियों पर

मोठेश निर्मोही

उषा पब्लिशिंग हाउस
जोधपुर-जयपुर

संचालिका · उषा थानवी
उषा पब्लिशिंग हाउस
नीम स्ट्रीट, वीर मोहल्ला, जोधपुर

शाखा : माधोविहारी जी का बाग
स्टेशन रोड, जयपुर

विक्रय केन्द्र : अमरनाथ बिल्डिंग
एम. जी. हॉस्पीटल रोड, जोधपुर

कलापक्ष : हरिप्रकाश त्यागी

संस्करण : प्रथम, 1986

मूल्य . पच्चीस रुपये

मुद्रक : एम. एल. प्रिण्टर्स, जोधपुर

CHEHRON KI TAKHTIYON PAR
Poems by Meethesh Nirmohi *Rs. 25/-*

चेहरों की तख्तियों पर

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

अनुक्रम

पेड़ का संगीत

कहीं तुम शब्द तो नहीं

बारूद बिछाने की जरूरत है

बाबा नागार्जुन, त्रिलोचन, डॉ मदन डागा,
डॉ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, हरीश भादानी,
डॉ रमाकान्त, ऋतुराज, फतेहकरण मेहरु,
डॉ. आईदान सिंह भाटी एवं हबीब कैफी के लिए

चेहरों की तख्तियों पर : व्यापक मानवीय अनुभूतियों का सम्प्रेषण

मोठेश निर्मोही वहिर्मुखी प्रकृति के कवि हैं। समकालीन मानवीय स्थितियों और मरुभूमि के प्राकृतिक परिदृश्य के प्रति वे बहुत संवेदनशील हैं, लेकिन उनकी संवेदनात्मक तीव्रता ने वस्तु-स्थिति के आकलन को आवृत न करके उजगार ही किया है। अपने युग के मूल्य-विपर्यय से उत्पन्न वेदना से व्यग्र होकर उन्होंने विडम्बना को वाणी दी है :

सूरज किरनों का वह टूटा चेहरा
कौड़ियों की लागत से बने
आटे के दियों से पिटता रहा।

× × ×

निर्मोही वर्तमान स्थिति से इतने क्षुब्ध हैं कि उसमें निस्तार का रास्ता उन्हें उसके ध्वंस में ही दिखलाई दिया है। उन्होंने देख है कि वर्तमान दुर्दशा मे सुधार की गुंजाइश नही रह गई है, उससे बचा जा सकता है तो उसे मिटाकर ही। उसके मिटने की प्रक्रिया आरम्भ भी हो गयी है, लेकिन उसे मिटने से बचाने के लिए चीख-चिल्लाहट भी मची हुई है। कवि को वह चीख-चिल्लाहट अवांछनीय प्रतीत होती है क्योंकि उससे स्थिति-परिवर्तन की सम्भावना में बाधा पड़ती है। कवि को लगता है कि ध्वंस का यह क्रम रुकना नहीं चाहिए क्योंकि 'अभी-अभी आग लगी है।' कवि यह अनुभव करता है कि :

यहां आषाढ़ के बादलों की नहीं
पेट्रोल छिड़कने की ज़रूरत है।

× × ×

आग बुझाने की नही
बारूद बिछाने की ज़रूरत है।

× × ×

वर्तमान को जलाकर खाक कर देने के पक्षधर कवि को अन्तर्मुख होना सुहा नही सकता। स्थिति को मन ही मन कोसते रहने या उसमे घुटते रहने का उसने विरोध किया है। वर्तमान दुर्दशा पर मौन रहना जितना आश्चर्य-जनक है उतना ही आपत्तिजनक 'अतल गहराइयों में गोते लगाकर क्रन्दन करना' और 'मौन क्षितिज से गुनाहों की बातें करना' भी।

भावाकुलता में बचे रहकर वस्तु-स्थिति को सवेदनायित करने की प्रवृति मोठेश की प्रकृति-वर्णन संबंधी रचनाओं में भी दिखलाई देती है। जिस परिवेश मे कवि ने जन्म लिया है और होश सम्हाला है, वहा प्रकृति का रूप कुछ अलग ही ढंग का है। मधुरता, कोमलता उसमे नही है, यहां तक कि मरुभूमि की चांदनी मे भी वह स्निग्धता नही है हिन्दी कविता मे जिसके चित्र सामान्यतः दिखलाई देते हैं। मरुस्थल मे रेत के फैलाव मे चादनी को निश्चित भाव से बिखरती दिखलाई दी है। चांदनी के इस रूप मे संवेदना संस्पर्श होने पर भी कवि के भाव का आरोप दिखलाई नही देता। इसके विपरीत रेत के बिखरे कणों मे चांदनी की चमक का फैलाव ही साकार हुआ है। चांदनी का यह वस्तुपरक अंकन तब और भी उभरता है जब संगीत की उपमा के बावजूद कवि उसके द्वारा धोरायी फैलाव को आकार देने की बात कहता है। मोठेश की चांदनी :

धोरायी फैलाव को
आकृतियां देती
बांहें फैलाये
संगीत-सी पिघलती है।

× × ×

मोठेश निर्मोही की कविता की एक बडी शक्ति यह है कि उनकी प्रखर संवेदनशीलता अपने भीतर स्थिति की वस्तु परकता को तिरोहित नही होने देती। 'पेड़ का संगीत' कविता मे वृक्षो पर बैठे पक्षियो की चहचहाहट पर कवि की मुग्धता की अभिव्यक्ति संवेदना और वस्तुबोध के मध्य संतुलन का एक सुन्दर परिणाम है।

इस वस्तुन्मुख कल्पनाशीलता ने मोठेश को वह क्षमता प्रदान की है जिसके बल पर वे अत्यन्त सूक्ष्म मंतव्य को मूर्त प्राकृतिक दृश्यो मे समो देने

मे सफल हुए हैं। शब्द और अर्थ के नाजुक रिश्ते का जिन्हे ज्ञान है वे जानते हैं कि शब्द किस तरह अर्थच्छायाओ को अपने भीतर समाहित किए रहता है। मोठेश ने इस अभिप्राय को छाया सोख लेने वाली दोपहरी के चित्र मे उतार दिया है :

उलझी-बिखरी
टेढ़ी-मेढ़ी
धूल भरी दोपहरी मे
छांहों को बांहों मे थामे
कही तुम शब्द तो नहीं ?

× × ×

निर्मोही की कल्पना ने अपने अंचल की प्रकृति-प्रदत्त परिस्थिति में मनुष्य की चित्तवृत्ति का साक्षात्कार किया है, फिर भी क्षेत्रीय बोध ने उसकी सामान्यता को आहत नही किया है। यही कारण है कि प्रकृति व्यापार का अंकन आंचलिक सीमाओ मे जकड़ा न रहकर रचना की सम्प्रेषणीयता और उसके साधारणीकरण मे सहायक बना है, जैसा कि इस कविता मे देखा जा सकता है :

अपने कंधों से
टकराता रेत का समन्दर
उफनता है
आग बरसाता सूरज भी
डूब जाता है
पर
सभी अवाक्
तलाश रहे होते है
पानी और पेड़।

× × ×

प्राकृतिक व्यापारों और मानवीय स्थितियो की अंतरसम्बद्धता का जो साक्षात्कार इस कवि ने किया है उससे उसकी रचना मे एक 'गुंथाव' पैदा हो गया है। यह साक्षात्कार उसने अपने वास्तविक परिवेश के मध्य किया है,

फिर भी उसकी कविता मे प्राकृतिक गतिविधि और मानवीय स्थितियो का गुंथाव क्षेत्रीय नहीं, सामान्य मानवीय अनुभूति को सम्प्रेषित करता है :

पगडंडियों पर थकी
अपनी सांसों को टोहता
रेत का उफनता समन्दर
हवा-हवा बिफरता है
और छलनी बनी आंखें
छानती ही जाती है
भीतर से उठे उफनते समन्दर को
ले नदी का रूप ।

× × ×

मीठेश की कविताओं मे अनेक स्थानों पर कल्पना की विदग्धता प्रभावित करती है। इस विदग्धता का रहस्य इस बात में निहित है कि वे प्रकृत-व्यापार का निषेध कर उसके स्थान पर कल्पित व्यापार की प्रतिष्ठा करते हुए निषेध और प्रतिष्ठा के मध्य विलक्षण सम्बन्ध का बोध कराते हैं। उदाहरण के लिए नीचे उद्धृत कविता मे बादल उमड़ने और बरसात से बाढ़ आने के प्रकृत-व्यापारो के स्थान पर क्रमशः मनुष्य की व्यथा के उमड़ने और अश्रु-प्रवाह से बाढ़ आने की कल्पना ने ऐसी विदग्धता उत्पन्न की है :

आकाश में नहीं
अब उमड़ेंगे वे
आदमी के असहाय मन की
अतल गहराइयो से
पी-पी कर दर्द
बादलों से नही
आंखों के बरसने से
आयेगी बाढ़ ।

× × ×

निर्मोही की कविता में यही प्रवृति यहां भी दिखलाई देती है जहा उन्होंने एक मुहावरे को काट कर उस पर दूसरे मुहावरे का अंश प्रत्यारोपित कर दी

परस्पर विरोधी कल्पनाओं को जोड़कर विलक्षणता उत्पन्न की है। 'दूध-घी की नदियां बहना' एक मुहावरा है और खून की नदियां बहाना उसके विपरीत भावना से युक्त एक दूसरा मुहावरा है। मीठेश निर्मोही ने दूध-घी की नदियों में खून बहने की कल्पना करके दो लाक्षणिकताओं को इस तरह जोड़ा है कि दोनों के विरोधपूर्ण संयोग से कवि के मंतव्य में एक तीखापन आ गया है :

दूध
और
घी की नदियां
बहाये ले जा रही है खून।

× × ×

मीठेश निर्मोही की काव्य-रचना का अपना वैशिष्ट्य उनका एकदम अपना है। उनकी वस्तुन्मुखता, परिवेश के निजत्व की पकड़, आंचलिकता के भीतर व्यापक मानवीय अनुभूतियों का सम्प्रेषण, प्रकृत के निषेध पर कल्पित की प्रतिष्ठा परस्पर विपरीत अर्थानुषगवाही मुहावरों का गठजोड़-ये विशेषताएं सम्मिलित रूप से मीठेश निर्मोही के काव्य की पृथक पहचान निर्धारित करती है।

—डॉ. जगदीश शर्मा

पेड़ का संगीत

बिफरती चांदनी

फैले-सूने आकाश से
झरती उतरती है
पगडंडियां तय कर
बिखरती ही जाती है
वेफिक्र-चादनी
बिखेर-बिखेर
दूर-दूर अपना रूप
[समीपता]
तब खो जाता है
मोटी तहों मे फैला अधकार
मिटने लगता है सन्नाटा
पगडडियों पर
गुनगुनाती–
अपने ही गले के घावों को
सहलाती है
धोरायी फैलाव को
देती आकृतियां
बांहें फैलाए
संगीत-सी पिघलती है

ठिठुरा चांद

रेत के समन्दर मे भीगा
सौन्दर्य में उलझा
बिफरता ही जाता है
ठिठुरा चाद
टीलों
मीलों-मीलों
अधेरे मे डूब
बिखेर-बिखेर
अपना रूप

मौन तुम्हारा

मौन तुम्हारा पिघला है
हिमालय की तरह
पर
रीता नही
तभी
होता रहा आंदोलित मैं
उद्वेलित समन्दर भी

याद

आकाश में नहीं
अब उमड़ेंगे ये
आदमी के असहाय मन की
अतल गहराइयों से
पी-पी कर दर्द
बादलों से नहीं
आंखों के बरसने से
आयेगी याद

शपथ हारा चांद

अंधकार से मुक्ति पाकर
धरती के कण-कण ने
बिखरी हुई सूरज किरनों का
किया था स्वागत
पर
किरनों का वह टूटा चेहरा
कौड़ियों की लागत से बने
आटे के दियों से पिटता रहा
अपनी ही परछाइयों को बांटने
कौओं और चूहों को
निमन्त्रण देता बटता रहा

स्थितियों का मारा
लावा पिघलता उसका दिमाग़
इसी भूचाल से ढहकर
खण्डहर होता रहा
और
उदास-पीले चेहरों-सा
शपथ हारा चाद

सूरज की किरनों-सा
रोशनदान से नीचे उतर
भूखे-प्यासे पक्षी की तरह
समझौते के मारग
जगल, गाव-गलियारों
शहर-मोहल्लों में
भटकता रहा
पर उसका विद्रोह
और आक्रोश रुका नही
अपने ही मुखौटो को नोचता
पुराने परो के सहारे उड़ता
खुशियों के खयाली महल बनाता
बिखरता ही गया

रेगिस्तान की दुपहर

अपने कंधों से
टकराता रेत का समन्दर
उफनता है
आग बरसाता सूरज भी
डूब जाता है
पर
सभी अवाक्
तलाश रहे होते हैं
पानी और पेड़ !

समन्दर और समन्दर

पगडंडियों पर थकी
अपनी सांसों को टोहता
रेत का उफनता समन्दर
हवा-हवा विफरता है
और छलनी बनी आंखें
छानती ही जाती है
भीतर से उठे उफनते समन्दर को
ले नदी का रूप
सच
कितनी सुखद है
समन्दर से नदी
और
नदी से समन्दर की यात्रा
तय करती ये आंखें ही जानती है

वसंत के - ये फूल

वसंत के-ये फूल
गंध नहीं,
देते हैं भुरभुरा दर्द
और न जाने क्यों
भीतर ही भीतर उगे फूलों को
नफ़रत की नदी में बहा देते है
इस दर्द में नहाते लोग
आंसुओं की बारिश नही करते
छटपटाकर पछाड़ खाकर-
मरते है
जंगलों के भीतर छिपी
आतंकित करती कविता
जब देती है दस्तक
पर
संगीतहीन हुए जंगल को कौन समझाये
सहवास से उगे इन फूलों से
बारूद नही तो फिर क्या पिघलेगा ?
उदास ठूंठा नीम
अपने नंगे होने का यह दर्द

लपटों से घिरे
पहाड़ों की परछाइयों में बिखेरता है
और
भयावह पहाड़ों की परछाइयां
झरनों को तलाशने निकलती है
और दूर-दूर तक
फुसफुसाहटों के बिखरने के बाद
लाल-पीले धुंधलकों में बिखरता जंगल
दांत किटकिटाता नजर आता है
हवा के रोंगटों को रौंदता हुआ
चीत्कार को देता हुआ आकार
यह स्पर्श दे जाता है
वक्त की पीठ पर लदे
बसंत के-ये फूल
गंध नहीं,
देते है भुरभुरा दर्द !

बूढ़े संस्कार

वृक्षों से भी/वक्त आये
झड़ जाते हैं पत्ते
पर
समझ नहीं पाया
मेरे बाबा के बूढ़े संस्कार
क्यों अभी भी हरे के हरे है ?
फिर भी लगता है
पतझड़ आयेगा
पीले पत्तों से हर हराकर
गिरने लगेंगे–वे
बसंत के आगमन का
स्वागत करते से–वे

कहीं तुम शब्द तो नहीं

कहीं तुम शब्द तो नहीं

उलझी-बिखरी
टेढी-मेढ़ी
धूल भरी दोपहरी में
छांहों को बांहों में थामे
कहीं तुम शब्द तो नहीं ?

अस्तित्व

जाडे की नगी रात
जेठ की दुपहर
अपना-अपना आलाप
अपना-अपना क़हर

उगते
और
अस्ताते सूर्य की
लाचारी का साथ
अपने होने का
झूठा अहसास

वंजर धरती से

वंजर धरती से
बिन वोये ही
अक्सर उगते हैं–वे
अनफूले-अनखिले
गंध बन खिलते है–वे
तब
किरनों से भापित हो
गहन अधकार के
प्रकाश स्तंभ बनते है–वे

छूत का रोग

मैने कहा
यह छूत का रोग है
दूसरों को मत दो
वह मौन/दूध की तरह उफ़नता ही गया
और
रिसता गया उसका रोग
आज वह
मेरे पूरे शब्द-परिवार की नस-नस में
फैल गया है
नसें तन रही है
फट रही है
स्थिति यह है
फैलता ही जा रहा है वह
अपना रूप बदले !

तेरा खत

कल तेरा खत आया
कांटों और फूलों से
सजा अधा शहर था वह
पर्वत ऊंचाइयों से
नजरें गिरकर टूट पड़ी थी उस पर
तेरी अश्क-स्याही से लिखा
यादों का वह सदेश
मेरे गांव मे
स्वप्नों का सूरज बन निकला है !

स्मृति

उफनती मोड़ लेती नदी
और
जीवन लेती भाषाओं की तरह
मेरी सांसों को भाषा ही तो है
तुम्हारी स्मृति

टूटी किरचों की तरह
धूप ही नहायी
तुम्हारी
स्मृति

अनगिन आकृतियों में दंशित
डरावने क्षणों का
करती स्पर्श
सनसनाती हवाओं मे फैलती
पसरती ही जाती है
तुम्हारी स्मृति

उफनता आवेश

बहरा होता
मेरा मैं
अंधा हो जाता है
तब
भूखा-प्यासा ही
थक गिरता है
मेरा उफनता आवेश

बेमानी है

क्षण भर एकान्त में बैठ
हृदय की अतल गहराइयों में
गोते लगाकर
क्रन्दन करना
या फिर
मौन क्षितिज से
गुनाहों की बातें करना
बेमानी है

जन्म लेता शब्द

मेरी पोर-पोर
टूटती है
धड़कने करने लगती हैं–
बगावत
फड़फड़ाता हू मैं
तब
जन्म लेता है एक शब्द
मेरे ही भीतर से
आग उगलता हुआ

अहसास

वार-वार विद्रोह किया तुमने
जव-जव
तुम्हे जिया मैंने
हर वार तुम्हारे द्वंद्व-प्रतिद्वंद्व
घात-प्रतिघात के
थपेड़ों से पराजित हुआ
विषाद के चरम क्षणों को छुआ
हर वार
अपनों से वहिष्कृत
अपराधी सावित होता
विकृत स्वभावों से पहचाना गया मैं
तुमसे तृप्त था
फिर भी हर वार
पराजित हुआ मैं
और
तुम्हारे साथी झूठ का
लिया जव भी सहारा
तुम्हें छिपाया
सच
हर वार

जन्म लेता शब्द

मेरी पोर-पोर
टूटती है
धडकने करने लगती है–
बगावत
फड़फड़ाता हू मैं
तब
जन्म लेता है एक शब्द
मेरे ही भीतर से
आग उगलता हुआ

ये सन्दर्भ कितने व्यर्थ

शब्द-गोलियों की बौछारों से
हो गये थे छलनी-छलनी
हो गयी थी
लाश भी क्षत-विक्षत
पहुचते-पहुंचते मंजिल तक
अंत तक
इकलाब जिन्दाबाद
श्रौर
जयहिन्द के नारो से
तोड़ा था दम जिसने
शोध की मंजिलों की श्रोर बढ़ते
उस क्रांतिवाहक के
जुलूसों के सन्दर्भ में
लिख दिये गये
कुछ पन्ने ऐतिहासिक
जन-जन के कलेजे पर
उस उबलती
उफ़नती लाल स्याही से
क्या वे जुलूस
क्या वह मशाल का दर्द

क्या वे समग्र क्रांति के नारे
जन-गण-मन की संगीत लहरी
और
जवानों की सलामी के साथ
दफना दिये जायेंगे
या
लिख दिये जायेंगे
कुछ और ऐतिहासिक पन्ने
इन सबको मिटाने के लिए ?
ये सन्दर्भ कितने व्यर्थ ???

बारूद बिछाने की जरूरत है

बारूद बिछाने की जरूरत है

अभी-अभी लगी है आग
और कह रहे हो
शहर जल रहा है !
कहते ही जा रहे हो
टेलीफोन करो
आ गई है डायलटोन
दमकल आ जाएं !
नहीं दोस्त !
नही
ऐसा मत करो
दिवालिया घोषित होने के लिए
बीमा पाने के लिए
यह समय पर्याप्त नहीं है
यह अर्थ युद्ध है
अड़े रहो
लड़ने को नही
सुस्ताने की जरूरत है

यह समय
देश भक्ति ढोने का नही

जिन्दगी और भविष्य की
राहत पाने का है
दहशत फैले ऐसा कुछ भी नही
अभी-अभी लगी है आग
और कह रहे हो
समाज जल रहा है !

नही दोस्त !
नही
ऐसा मत कहो
अभी तो दुकान जली है
पुलिस के पहुंचने तक
हवाओं को दस्तक देने दो
घर जलना शेष है
निःशेष होने दो
समाज तो बहुत दूर की बात है
समाजवाद लाने की नही
नया अर्थ देने की जरूरत है
होम जो होना है होने दो
चिन्ता मत करो मेरे दोस्त
अनाम गोदामो में
अघोषित माल भरा है
अभी-अभी लगी है आग
और कह रहे हो
देश जल रहा है !

नही दोस्त !
नहीं
ऐसा मत करो
यहा आषाढ़ के बादलों की नही
पेट्रोल छिड़कने की जरूरत है
जब तक बही-खाते नही जल जाएं

जिन्दगी और भविष्य की
राहत पाने का है
दहशत फैले ऐसा कुछ भी नही
अभी-अभी लगी है आग
और कह रहे हो
समाज जल रहा है !

नही दोस्त !
नही
ऐसा मत कहो
अभी तो दुकान जली है
पुलिस के पहुंचने तक
हवाओ को दस्तक देने दो
घर जलना शेष है
नि·शेष होने दो
समाज तो बहुत दूर की बात है
समाजवाद लाने की नही
नया अर्थ देने की जरूरत है
होम जो होना है होने दो
चिन्ता मत करो मेरे दोस्त
अनाम गोदामो मे
अघोपित माल भरा है
अभी-अभी लगी है आग
और कह रहे हो
देश जल रहा है !

नही दोस्त !
नही
ऐसा मत करो
यहा आपाढ़ के बादलो की नही
पेट्रोल छिड़कने की जरूरत है
जब तक बही-खाते नही जल जाएं

मैंने बीज नहीं बोये

मैने बीज नही बोये
वक्तव्यों की झड़ी लगाई है
भुरट फले खेतो मे
बाजरे की चाह व्यर्थ है दोस्त !

और तुम
मेरे वक्तव्यो पर
कर बैठे हो भरोसा
कितने भोले हो
मेरे शब्दो के शहद से
कदापि नही होगा
तुम्हारी बीमारी का इलाज
ये आलीशान इमारतें बना सकते है
साम्प्रदायिकता की
भड़का सकते है आग
और डकारने को
डकार सकते हैं सब कुछ
तुम भले ही उकेरते रहो
परत दर परत
पर सूरज बरखास्तगी के बाद भी

अंधेरा ही उगलेगा
उजाले के बाद अंधेरा निश्चित है

मैं तो नंगा ही हूं
नंगे पर बेशर्मी का कोई असर नही होता
शताब्दियों का यही रहा है इतिहास
इन अनुभूतियों को गांठ कर लो
मैंने बीज नही बोये
फकत
वक्तव्यों की झड़ी लगाई है
वक्तव्यों की झड़ी !
फिर
भुरट फले खेतों में
बाजरे की चाह व्यर्थ है दोस्त !

समय कभी बरख़ास्त नहीं होता

मखमली सीढियां
चढ़ते हुए
तुमने कभी तपते सूरज को
पिघलते देखा है ?

देखा होता तो
बर्फ को उबालने की बात
नहीं करते तुम

भला कैसे बरदाश्त कर पायेंगे वे
दफतरों के बद दरवाज़ों पर
संतरियों की बेरुखी सीनातनी ये बंदूकें
तुम भले ही
उनके चेहरो को नोचने का
करो प्रयत्न
वे ज़ख्म से परेशान होने वाले नही
वे समय की कांटेदार सीढ़ियों के
आदी जो हो चुके है
तुम भले ही उन्हें
बरख़ास्त कर सकते हो
पर समय कभी बरख़ास्त नही होता

क्योंकि अंधेरे में ही नहीं
धोले दिन
सार्वजनिक पुस्तकालयों के
कर्मचारियो मे
सरे ग्राम पीना पिलाना होता है
पुलिस के बारे में सुनोगे बयान
पकड़ने ग्रायेगी साथ बैठ जायेगी
बात साफ है
तुम्हारे गौरवशाली प्रशासन चुस्त ग्रभियान के नाम
हमारे ग्रांख-कान/गरदन-जुबान
ग्रौर पेट के खिलाफ
फकत तुम्हारी नाटकीय घात है

ग्रस्तित्व की लड़ाई के लिए इस तरह
भारतीय संस्कृति को
यकायक कैसे मिटा सकते हो ?
ग्रस्तित्ववादी हो तो ग्रमेरिका जाग्रो
हिनहिनाते काले घोड़े की तरह दौड़े-दौड़े

सचमुच
गधे ग्रौर भेड़िये में अंतर किये
करेंगे स्वागत तुम्हारा
शिनाख़्त करते-से वे वहां के लोग !

आखिर कितनी बार

आखिर कितनी बार
एक सुनहली यात्रा का
स्वप्निल ससार लिये
मेरी आखों से निकली
साजिश की सुरगों से
गुजरते रहोगे तुम !
आखिर कितनी बार !!

मेरे ये दूवई कपड़े
खासकर तुम खरगोशों को
भ्रमित करने का जाल है
जब भी
होगी सुरसुराहट
धीरे-धीरे
तुम मेरे दातों की खोह मे होओगे
यकायक यह दहशत
खामोशी को तोड़ती
चीख़ का ले लेगी रूप
और तुम
मेरे गौरवशाली

नजदीकी अनुभवों में डूबे
मेरी लोकप्रियता
और वफ़ादारी के नारों से
भर लोगे झोली
क्योंकि तुम्हें
अंधेरे से दागी जाने वाली
बंदूक की
हर गोली का मालूम है इतिहास
और मालूम है
भीतर ही भीतर सुलगती नफरत का इतिहास
जो अक्सर वक्त के सिंहासनो सपने संजोती
घिनौने चेहरे अपनाती
बदलती रहती है रूप

झुलसती पगडंडियां

परिवर्तन की मुद्रा में
सारा का सारा देश
आकाश की सतहों-सा फटने लगता है

बंटने लगती है धरती
गरजते बादलों की-सी
उभरने लगती है आकृतियां
घायल होने लगता है सीमांत

बूढ़े मां-बाप और
नयी दुल्हन को छोड़
यात्रा तय करने निकलता है
लपटों से झुलसती
पगडंडियों के सहारे
लाशों के शहर

जहां जम्हाइयां लेते हैं
थके हारे भूत
गोलियों की आवाजे
पहाड़ों से टकराकर
फड़फड़ाती-सी लौटती हैं

निरन्तर बढ़ता जाता है
शत्रु के उन्माद पर टूटता है
बजबजाता हुआ
लपटों से फूटता है
और हो जाता है शहीद

लेकिन
टुकड़ों में बंटी धरती
चिल्लाते लोग
बारूदी गंध के मिटते ही
होते हैं शांत
गांव की हर उदास झोंपड़ी
झांकती है

दुखियाया बूढ़ा बाप
अंसुवाती मा
प्रार्थनारत है
मौन सवर्था मौन
पल-पल भीतर से जगी सहभागिनी !

कुछ दिनों बाद
फिर वही होता है
कराहने लगता है घायल सीमांत

देखता हूं
फिर हर कहीं
असहाय मां-बाप
दुधमुंहे बच्चे
उपेक्षित विधवाएं
मूक संवेदनाओं को सीने में दबाए
मेरी तरफ कई-कई आंखें
बौखलाया आकाश
फिर सतहों से फटता

नयी-नयी आकृतियां उकेरता हुआ
जन्म ले लेता है
एक और सैनिक
एक और बाप
प्रार्थनारत !
शस्त्र का अभिषेक

शास्त्र से हो जाते हैं आगे
भावी शहादत के
शौर्यशाली शब्द !

यह बीज किसने बोया था

शताब्दियों तक चुप्पी साधे
भीतर ही भीतर
साम्प्रदायिकता की आग झुलसते
जख्मी चेहरे
उकेर गये पुश्तैनी रंजिश
रक्तहीन अंधेरी रात ने भी
बदल दिया अपना रूप
भोर होते ही
निकल पड़ी एक चीख
फिर एक सूरज की हत्या हुई
श्रद्धांजलियां ही श्रद्धांजलियां
ठहरी हवाओं ने भी
शहीद होने की दे दी संज्ञा
पर
रस्म अदा करने के बाद
उन्हीं विश्रब्ध हवाओं ने
टुकुर-टुकुर ताकते
खतरनाक मोड़ लेते इतिहास से
इतना ही पूछा
यह बीज किसने बोया था ?

यह तो तुम हीं जानते हो

तुम कौन से सूरज की बात करते हो
यहां
उगने वाला हर सूरज अंधेरा पीकर
सवेरा उगलता है
वह पुरखो वाला सूरज तो बिरला ही था
अपने को बिखेर
आलोकित करता रहा तुम्हें
अब, जब बदले हालात में
सृष्टि भी बदल रही है
विज्ञान से प्रभावित
उस सूरज की कल्पना व्यर्थ है दोस्त !

पुरखों के आजमाये
भ्रष्ट और निकम्मे प्रशासन में
तुम्हारी ईमानदारी
तरजीह नहीं पा सकती
यहां उगने वाले हर सूरज की तरह
समर्पण में डूब जाओ

फिर तुम्हें
कोई भ्रष्ट और निकम्मा नही कह सकेगा

पूरे प्रशासन के भ्रष्ट और
निकम्मा सिद्ध होने पर
परिभाषा अपने आप बदल जाती है

फिर इन नये अर्थों में
भ्रष्ट और निकम्मे व्यक्तियों को
बर्दाश्त नहीं करने की चेतावनी
कहां तक सार्थक होगी
यह तो तुम ही जानते हो !

सतह से टूटे लोग

अनजाने ही अपनी सतहो से टूटते कुछ लोग
कर रहे हैं बग़ावत
बनायेंगे अपना इतिहास ?
बढ़े जा रहे है
जहा आग वहता समन्दर है

सच
घोर अंधकार में
भटक रहे है-वे लोग
जहां आग उगलता गहरापन है

कुछ गू गे
कुछ वहरे है
पर ढेर सारे
न होते हुए भी अंधे है
इनमें मुट्ठी भर लोग
न गू ंगे है न वहरे है
न पंगु है न अंधे है

नारों के निर्माता है
राम-बुद्ध
गांधी और नानक के

ज्ञाता है
उन्हें अपने चेहरों पर उतार
अपने सपनों के अधूरे-वे लोग
चीख और गिड़गिड़ाहट की हिंसा के बीच
पी-पी कर बारूदी गंध
मेरे देश में उगे सूरज की
बौनी और लम्बी परछाइयों को बिन परखे
कीर्तन करती भोली आंखों से
घनी नफरत का उगलवा रहे है लावा

सच
मेरे देश में ही-वे लोग
नये कुरुक्षेत्र की तलाश कर रहे है !

लोहे से सख्त हाथ

जड़ दिये गये थे/दरवाजो पर
ताले, मोटे ताले
आधार स्वतन्त्रता का
अधिकार और कानून
लिये गये थे छीन
और घुटने लगा था मन
तालों को तोडने की कोशिश मे
ये लोहे से सख्त हाथ
करने लगे थे हरकत
ताले, मोटे ताले टूटे थे
पर/हजारों बर्बर चीलें
अपने भद्दे पंजों में दबोचे
ताजा लाशें
उडना चाहकर भी नही उड सकी थीं
अंततः
स्वतः टूट गईं/एक-एक कर
हाथ, लोहे से सख्त हाथ भी
पड़ गये थे सुस्त

कौन हैं ये लोग

अपने ही दरवाजों
दीवारों, मुंडेरों से भरमाये
कौन हैं– ये लोग ?

निकल पड़े हैं सड़कों पर
अपने ही लोगों को
करने लगे हैं गूंगे बहरे
और हौले-हौले
लूट रहे हैं/दूध के बूथ
राशन की दुकानें
हलवाई के पकवान
ऑफिसों की फाइलों में
लगाये जा रहे हैं आग
कौन हैं– ये लोग ?

बारूद उगलते उनके मन
सख्त अंधेरे से
घबराती बस्तियों की ओर
निकल पड़े हैं

जिनके हाथों
हो रहे हैं तबाह अपने ही लोग

जिनके सीनों में भड़क रही है
खून की प्यास
और बहाये ले जा रहे है- वे
रह-रह कर अपना ही खून
सड़कों-चौराहों पर
कौन है- ये लोग
अपने ही खून से सनी लाशे
नुचवा रहे है
गिद्ध बने- वे
अपनी हड्डियों पर मांस की गुद्दियां पनपाने
और
क्यो हो रहे है इतने मजबूर
उनके पत्थर तोड़ते फौलादी हाथ
क्यों निकल पडे है- वे
थाम बंदूकें
रह-रह कर उगल-उगल कर आग
एक जून रोटी की खातिर
अपने ही को करने राख
कौन है- ये लोग ???

आजादी का भोग

अब यहां बसेरा नहीं करती
सोने की चिड़िया
काले कोटों के कांपते हाथों
न्याय का
गला घोंटा जाता है
अफसोस
कैसा है आजादी का भोग
हर कहीं
गोली, छटपटाते, चीखते-चिल्लाते लोग
फायर-ब्रिगेड की घंटियां
मांओं के सुन्न कलेजे
जिन्दा लाशों से उठी
लपटों की परछाइयां
सुरंगों का जाल बिछाये
साम्प्रदायिकता की भड़की आग
मशालों में जलती हुई आखें
भिची हुई मुट्ठियां
और तेजाब से झुलसी जुबानें
सीना तनी बंदूकों की नोक
हर कोई

हर किसी से पूछता हुआ
क्या ये ही हैं
स्वतंत्र देश की जरूरतें ?

लेकिन
पीले धुंधलके से उठा
चिथड़ा जवाब मिलता है
जायज है ये सब कुछ
जब पेट की आग
बन्दूक से बुझाई जाती है

एक सवाल

चारों ओर
सुलगने लगी है आग
और मौन हो तुम !

दूध और
घी की नदियां
बहाये ले जा रही है खून
और मौन हो तुम !

और मौन है
धर्म शास्त्रों के प्रश्न उछालते शब्द
उनमें है कैद
वेदों की ऋचायें
ऋपियों की भविष्यवाणियां
सभी तो मौन हैं

प्रकट हो रही है तो फकत
इन दृश्यों के बीच
गुजरती हुई भीड़
कल युग है
बढ़ रहा है पाप
पाप से भरे घड़े के पास

फूटने के अलावा चारा भी तो नहीं
उछल रहे है शब्द
और मौन हो तुम !

तभी सशयी घडघड़ाहट के
तुरत बाद
आशंकाए कौधती है
फटने लगता है परिवेश
सर्वत्र
पानी नही/कम्बख्त लहू बरसता है
और मौन हो तुम !

बदले हालात में
पण्डे भी
खून से
नहाने के हो गये है आदी
मंदिरों में भी
लहू से नहाये बिना
वर्जित है प्रवेश
वहा भी जायज है यह सब

और
धर्मस्थलो से भड़की आग ही तो
कैद किये है
अपने ही शहर गांव गली और
मौहल्लो को
पनाह भी ये ही दे रहे है
और मौन हो तुम !

और अपनी आकांक्षाओ से अलगाते
मौन साधे
लेखनी को खून में डुबोये
लिखे जा रहे हो

दो रोटी की रिश्वत खातिर
होते जा रहे हो शहीद

सच
लक्ष्यहीन मोड़ों की ओर झुकी
तुम्हारी अपनी लेखनी से उगला
तुम्हारा अपना कैसा होगा
क्यों नहीं होता
छा जाती है उदासी
इन मनहूस पन्नों को पढ़ते-पढ़ते
फिर भी मौन हो तुम !

फिर
कौन सुनेगा तुम्हारे उपदेश
कौन कहेगा तुम्हें सर्जक
और कौन से पाठक को
समझोगे अपना तुम
इन उदास परछाइयों से
खोये-खोये उठते हैं सवाल
फिर भी मौन हो तुम ! !

चेहरों की तख्तियों पर

अभावों को भरने
रोज-रोज
चोला बदलते–ये लोग

अपने चेहरों पर
टंगी तख्तियों पर
उकेर लाये है भयंकर शक्लें

अपनी गर्भवती कल्पनाओं को पनपाने
भीड़ भरी सड़कों पर
निकाल रहे है बेमानी चीखें
कितना खौफनाक है/यह परिवेश

खलिहानों के देवताओं की
सिसकती पसीने की बूंदों को
उछाले जा रहे है
अपने ही चेहरों पर
खोयी हुई अचीह्नी
पहचान की तलाश में
इन जिन्दा लाशों के बीच
बढाये जा रहे है
अपने थके हारे पांव !

अभावों को भरने
रोज-रोज
चोला बदलते–ये लोग !

इक्कीसवीं सदी तक पहुंचने में लाचार हूं मैं

तुम से कितनी बार कहा
गोली उन्हे नहीं मुझे मारो
वे शहर और गांव के
अमीर बेटे है
अंधाधुध छूट और
लूट में व्यस्त लोग
भ्रष्टाचार की सीढिया चढ़ चुके है

मैंने कितनी बार कहा
मुझे
भूख-वमुन
सच-झूठ
चोरी और डकैती का मालूम है इतिहास

और मालूम है
गली, चौराहों, सड़कों पर
नजला, गर्मी, खाज और आंतों में खुश्की लिए
हार थामे चितपड़े लोगों का इतिहास

तभी तो नहीं तलाशा है नतीजा
नही किया है समझौता

भोगी है भूख
सही है
काले धन की मार
खुशियों के ताबूतों की हार
फिर भी जिन्दा आतंक हूं

भोंपू बनाया
हर किसी का उकसाया
यहां तक कि नारों में समाया जाता हूं मैं
दर्दों को कोख में दबाए
न मरता हूं न जीता हूं
कत्ल, खून, आग, बन्दूक और
बमवाली जल्लादी बस्तियों का मारा
अधमरा हूं मैं

नफरत अपने आप से है-मुझे
कितना सख्त और अनगढ़ हूं
सजा दो अहसान होगा
गोली उन्हें नही मुझे मारो

क्षोभ और थकान भी चूर है मुझसे
मेरी कोई सुबह नही/नहीं है कोई शाम
रीझ, बिना ऐंठे हांफते-हांफते
गुजार दिये है दिन-रात
गधे की देह मे शेर
और कीड़ा लगे दिमाग की
नफरत का मारा हूं मैं

झुरियों के खेत उगाये है मैंने
और सवेरे की तलाश में
घोंटा है अंधेरे का गला
अब कैसे पार पड़ेगी
इक्कीसवीं सदी की बात

पेट में जब जख्म घनेरे हैं
तपिस आंखों में है कैद
और मुझ अधनंगे को
उघड़ने और पहनने का
कोई नहीं है शऊर
जवानी और बुढ़ापे का आज तक
ढोता रहा हूं बोझ
रोटी पर भी नही जतलाया है अधिकार
रग-रग लावा उगलता है
थरथराते शब्दों के टांके मत लगाओ
और मत बनाओ मेरे घावों को नासूर
मौत घबरायी हुई है
और जब
खुदकुशी भी हार रही है
गोली उन्हे नही मुझे मारो
इक्कीसवी सदी तक
पहुंचने मे लाचार हूं मै !

बेंजामिन मोलाइस

बेंजामिन मोलाइस नहीं था वह
वह तो एक शब्द था/एक शब्द है
जिसने फकत बदला है अर्थ
तुम कहते हो उसे फांसी दे दी गई
और मारा गया है वह
यह सोचना तक भी है व्यर्थ !

शब्द कभी मरा है ?
शब्द ने अर्थ भले ही बदले
शब्द ने भले ही दे दिये अर्थ
पर कभी नहीं किया अनर्थ
भले ही बार-बार फांसी पर झुलाया तुमने
वह उसकी शहादत है
क्रांति, क्रिया या प्रतिक्रिया
शब्द की आदत है

तुमने मोलाइस की देह को दफनाया होगा
उसका शब्द अभी भी समर्थ है इतना
कविता पोस्टर जितना
वह पोस्टर बना चीखता-चिल्लाता है
मां 'पोलिन' कहती हैं-यह तो उसकी पुरानी आदत है

और जब-जब भी वह चीखा-चिल्लाया है
मां ने बेटे को
और बेटे ने मां को पाया है।
नस्लवादी सरकार !
तुमने उसे दफनाने को क्रूर कोशिश कर
अपनी ही मां का 'हांचल' काटा है
जितना विश्व-जन को सन्त्रस्त किया है तुमने
उतना ही हर किसी को खबरदार कर उसने
घर-घर क्रांति का बीज बांटा है !

सावधान ! ओ अफ्रीकी सरकार सावधान
शेष नाग का फन डोलेगा
कांपेगी धरती
तब तुम्हारा अन्तर बोलेगा
बेंजामिन मोलाइस नहीं था वह
वह तो एक शब्द था/शब्द है
जिसने फकत बदला है अर्थ
वह उसकी शहादत है
क्रांति, क्रिया या प्रतिक्रिया
शब्द की आदत है !!!